Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies
Online ISSN 2278-8808, SJIF 2025 = 8.486
https://www.srjis.com/issues_data/276
Peer Reviewed & Refereed Journal, NOV-DEC 2025, Vol- 14/92

डॉ. भीमराव अंबेडकर का समावेशी चिंतन एवं उनकी वर्तमान प्रासंगिकता

डॉ. शोभनाथ पाठक
एसोसिएट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, डी.ए.वी. पी.जी. कॉलेज, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

Paper Received On: 20 NOVEMBER 2025
Peer Reviewed On: 24 DECEMBER 2025
Published On: 01 JANUARY 2026

परिचय

डॉ. भीमराव अंबेडकर (1891–1956) आधुनिक भारत के उन दुर्लभ चिंतकों में है जिनकी दृष्टि केवल अपने समय की समस्याओं को नहीं समझती थी बल्कि आने वाली सदियों के लिए भी एक नैतिक, लोकतांत्रिक और समावेशी मार्ग निर्धारित करती है। भारतीय समाज की जड़ता, जातिगत पदानुक्रम, सामाजिक बहिष्कार और आर्थिक विषमता को देखते हुए अंबेडकर ने सामाजिक न्याय को राजनीति, अर्थव्यवस्था और संस्कृति के केंद्र में स्थापित करने का प्रयास किया। उनका चिंतन इस विश्वास पर आधारित था कि कोई भी समाज तब तक प्रगतिशील नहीं हो सकता जब तक उसके सबसे निचले, सबसे उत्पीड़ित और सबसे बहिष्कृत वर्ग को समान अधिकार, गरिमा और अवसर न मिलें (Rodrigues, 2002)।

अंबेडकर का समावेशी चिंतन उनकी व्यक्तिगत जीवन–यात्रा का परिणाम भी था। बचपन के भेदभाव, सार्वजनिक स्थानों पर अपमानित होने के अनुभव, और स्कूल में पानी तक न मिलने जैसी घटनाओं ने उन्हें यह समझाया कि भारतीय समाज की संरचना गहरे स्तर पर अन्यायपूर्ण है। कोलंबिया विश्वविद्यालय और लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स में अध्ययन ने उनकी दृष्टि को वैश्विक बनाया, जहाँ उन्होंने liberty, equality and fraternity की मानवीय अवधारणाओं को समझा (Zelliot, 1992)। यही विचार आगे चलकर भारतीय संविधान की बुनियाद बने।

अंबेडकर की समावेशी दृष्टि सात प्रमुख आयामों में दिखाई देती है– जाति उन्मूलन, आर्थिक समानता, श्रमिक अधिकार, लैंगिक समानता, राजनीतिक प्रतिनिधित्व, संवैधानिक मानवाधिकार और नैतिक–धार्मिक पुनर्जागरण। उन्होंने जाति को केवल सामाजिक समस्या नहीं, बल्कि आर्थिक और राजनीतिक अवसरों को सीमित करने वाला एक सर्वव्यापी ढाँचा बताया (Ambedkar, 1936)। इसलिए अंबेडकर का समावेशी चिंतन केवल सामाजिक सुधार का आग्रह नहीं था, बल्कि एक व्यापक

Copyright © 2025, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

सामाजिक–राजनीतिक क्रांति का दर्शन था। आज 21वीं सदी के भारत में, जब जातिगत हिंसा, आर्थिक असमानता, धार्मिक ध्रुवीकरण, लैंगिक अन्याय और लोकतांत्रिक संस्थाओं की कमजोर पड़ती संरचना जैसी चुनौतियाँ सामने हैं, अंबेडकर का चिंतन पहले से अधिक प्रासंगिक प्रतीत होता है (Teltumbde, 2018)। सामाजिक लोकतंत्र, बंधुत्व, मानव गरिमा, नैतिकता और अधिकारों के बारे में उनकी दूरदृष्टि वर्तमान भारतीय समाज के लिए एक दिशा–सूचक यंत्र की तरह कार्य करती है।

अंबेडकर का जीवन–संघर्ष और समावेशी चेतना की उत्पत्ति

डॉ. भीमराव अंबेडकर का समावेशी चिंतन उनके व्यक्तिगत जीवन–संघर्ष, बाल्यावस्था के अपमान, शिक्षा के वैश्विक अनुभवों और भारतीय समाज में व्याप्त बहिष्कार की गहरी समझ का परिणाम था। 1891 में महू (मध्यप्रदेश) में महार जाति में जन्मे अंबेडकर बचपन से ही उस सामाजिक व्यवस्था का हिस्सा थे, जो उन्हें 'अस्पृश्य' मानकर किसी भी प्रकार की गरिमा और बराबरी से वंचित करती थी। स्कूलों में उन्हें अलग बैठाया जाता था, शिक्षक उनकी कॉपियाँ तक नहीं छूते थे और पानी पीने के लिए उन्हें ऊँची जाति के किसी लड़के की कृपा का इंतज़ार करना पड़ता था– ये अनुभव अंबेडकर के लिए केवल व्यक्तिगत पीड़ा नहीं थे, बल्कि वे भारतीय समाज की सामूहिक विकृति को प्रकट करने वाले कठोर सत्य थे (Zelliot, 1992)। इन्हीं अपमानजनक अनुभूतियों ने उनमें यह विश्वास पैदा किया कि भारतीय समाज की संरचना स्वयं अन्याय पर आधारित है और जब तक यह संरचना नहीं बदलेगी, तब तक व्यक्तिगत उन्नति भी व्यर्थ है। इसी समझ ने उनकी समावेशी चेतना का बीज बोया, जो आगे चलकर सामाजिक समानता की व्यापक दृष्टि में विकसित हुई। उनकी वैचारिक यात्रा में कोलंबिया विश्वविद्यालय का अनुभव निर्णायक मोड़ साबित हुआ। 1913 में अमेरिका पहुँचकर उन्होंने जॉन डेवी से प्रागमतावाद, सामाजिक लोकतंत्र और मानव–केन्द्रित नैतिकता के सिद्धांतों को सीखा, जिनसे उन्हें यह समझ मिली कि लोकतंत्र केवल शासन प्रणाली नहीं, बल्कि जीवन जीने की नैतिक पद्धति है (Rodrigues, 2002)। समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व जैसे मूल्य वहीं उनके वैचारिक जीवन की स्थायी धुरी बने और बाद में वे भारतीय संविधान के मुख्य स्तंभ भी बने। कोलंबिया में प्राप्त इस शिक्षण ने उन्हें यह भी समझाया कि सामाजिक परिवर्तन केवल कानून बनाने से नहीं, बल्कि समाज की नैतिक चेतना को बदलने से संभव होता है। इसी कारण अंबेडकर का समावेशी दृष्टिकोण केवल राजनीतिक सुधार नहीं, बल्कि सामाजिक–नैतिक पुनर्गठन की परियोजना था।

इसके बाद लंदन स्कूल ऑफ इकोनॉमिक्स (LSE) में अध्ययन ने उनके आर्थिक विचारों को गहराई प्रदान की। उन्होंने पूँजीवादी शोषण, उपनिवेशवादी अर्थव्यवस्था और असमान विकास के स्वरुपों का विश्लेषण किया। The Problem of the Rupee (1923) में उन्होंने स्पष्ट किया कि आर्थिक न्याय के अभाव में सामाजिक लोकतंत्र कभी भी टिकाऊ नहीं हो सकता। उनके लिए न्याय का अर्थ केवल कानूनी

Copyright © 2025, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

अधिकार देना नहीं था, बल्कि संसाधनों, भूमि, पूँजी और अवसरों तक समान पहुँच सुनिश्चित करना था (Ambedkar, 1923)। इस वैश्विक अध्ययन ने अंबेडकर के भीतर यह दृढ़ विश्वास स्थापित किया कि भारत को सामाजिक ही नहीं, बल्कि आर्थिक समावेशन की दिशा में भी गहराई से कार्य करना होगा।

भारत लौटने के बाद उनके साथ हुए जातिगत व्यवहार ने उन्हें एक बार फिर यह याद दिलाया कि शिक्षा से सामाजिक स्थिति बदल सकती है, परंतु सामाजिक संरचना तब तक नहीं बदलती जब तक उसके मूलभूत आधारों को चुनौती न दी जाए। बड़ौदा में उन्हें किराया देने के बावजूद रहने के लिए स्थान नहीं दिया गया; कामठी में उन्हें पानी पीने से रोका गया; और अन्य कई सामाजिक अपमानों ने उन्हें इस निष्कर्ष पर पहुँचाया कि केवल व्यक्तिगत संघर्ष से मुक्ति संभव नहीं। इसी कारण उन्होंने सामाजिक आंदोलन को परिवर्तन का वास्तविक माध्यम माना। महाड़ सत्याग्रह और चवदार तालाब आंदोलन ने उनके समावेशी दर्शन को सार्वजनिक रुप दिया। वहाँ उन्होंने कहा कि मनुष्य बराबर पैदा होता है, परंतु धर्म और सामाजिक संरचना उसे बराबर नहीं रहने देती– यह उद्घोष भारतीय सामाजिक चेतना के इतिहास में एक क्रांतिकारी क्षण था।

अंबेडकर के समावेशी चिंतन में स्त्री–समता भी केंद्रीय स्थान रखती हैं। वे स्पष्ट थे कि कोई भी समाज तभी प्रगतिशील और न्यायपूर्ण कहा जा सकता है, जब उसकी महिलाएँ समान अधिकारों से सम्पन्न हों। इसी दृष्टि से उन्होंने हिंदू कोड बिल में विवाह, संपत्ति, उत्तराधिकार और तलाक संबंधी महिलाओं की समानता के लिए सबसे गहरे सुधार प्रस्तावित किए। उनके अनुसार, स्त्री की दासता समाज की दासता उत्पन्न करती है, और इसलिए लैंगिक समानता सामाजिक परिवर्तन के लिए अनिवार्य है (Sharma, 2015)। अंबेडकर के लिए स्त्री मुक्ति केवल कानून का प्रश्न नहीं, बल्कि सामाजिक नैतिकता को चुनौती देने का अभियान था।

अपने जीवन के अंतिम वर्षों में अंबेडकर ने बौद्ध धर्म को अपनाया क्योंकि वे मानते थे कि भारतीय समाज को एक ऐसे नैतिक ढाँचे की आवश्यकता है जो समानता, करुणा, प्रज्ञा और तर्कशीलता पर आधारित हो। The Buddha and His Dhamma में वे बताते हैं कि बौद्ध धर्म जाति–आधारित भेदभाव को नकारता है और मानव गरिमा को सर्वोपरि मानता है (Ambedkar, 1957)। उनका धर्म–परिवर्तन व्यक्तिगत आध्यात्मिक निर्णय नहीं था, बल्कि सामाजिक नैतिकता का पुनर्निर्माण था। एक ऐसा मॉडल जिसमें व्यक्ति का सम्मान किसी जन्मपरक पहचान पर नहीं, बल्कि उसके नैतिक कर्तव्यों पर आधारित हो। समग्र रूप से देखें तो अंबेडकर की समावेशी चेतना तीन मुख्य स्रोतों– व्यक्तिगत अनुभव, वैश्विक शिक्षा और सामाजिक आंदोलन की संयुक्त विरासत है। अस्पृश्यता के अपमान ने उन्हें सामाजिक असमानता का कठोर यथार्थ दिखाया, कोलंबिया और LSE की शिक्षा ने उन्हें एक लोकतांत्रिक, वैज्ञानिक और मानवतावादी दृष्टि प्रदान की, और भारतीय समाज में किए गए संघर्षों ने उन्हें यह सिखाया कि वास्तविक

Copyright © 2025, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

परिवर्तन तभी संभव है जब समाज के सबसे कमजोर व्यक्ति को सम्मान और अधिकार मिले। इसी जीवनानुभव की भट्ठी में तपकर अंबेडकर वह विचारक बने, जिनका समावेशी चिंतन भारत के लिए एक न्यायपूर्ण, मर्यादित और मानवीय भविष्य का खाका प्रस्तुत करता है।

अंबेडकर की समावेशी चिंतन–धारा (Inclusive Thought)

डॉ. भीमराव अंबेडकर की समावेशी चिंतन–धारा भारतीय समाज के पुनर्गठन की एक व्यापक, बहुस्तरीय और गहराई में मानवीय परियोजना है, जो सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक और संवैधानिक सभी क्षेत्रों में समानता और मानव–गरिमा की मांग करता है। अंबेडकर ने भारतीय समाज में व्याप्त असमानता को किसी व्यक्तिगत पूर्वाग्रह का परिणाम नहीं, बल्कि एक संरचनात्मक समस्या के रूप में देखा, जिसे वे systemic inequality कहते हैं (Rodrigues, 2002)। इसलिए उनका समावेशी विचार इस लक्ष्य पर केंद्रित था कि व्यक्ति की जाति, धर्म, लिंग, वर्ग या आर्थिक स्थिति किसी भी रूप में उसके अवसरों, अधिकारों और सम्मान को सीमित न करें। उनकी दृष्टि में समावेशन का पहला और सबसे महत्वपूर्ण आधार जाति–प्रथा का उन्मूलन था। Annihilation of Caste में उन्होंने स्पष्ट किया कि जाति भारतीय समाज को हजारों टुकड़ों में विभाजित कर देती हैं और लोकतांत्रिक भावनाओं को नष्ट कर देती है (Ambedkar, 1936)। अंबेडकर ने जाति को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक– तीनों स्तरों पर चुनौती दी, क्योंकि उनका मानना था कि जब तक जातिगत ऊँच–नीच बनी रहेगी, तब तक न सामाजिक समानता संभव होगी, न राजनीतिक सहभागिता, और न आर्थिक अवसरों का न्यायपूर्ण वितरण (Omvedt, 1994)। इस जाति–विरोधी दृष्टिकोण से ही उनकी समावेशी चिंतन–धारा का प्रारंभ होता है।

समावेशन के आर्थिक आयाम में अंबेडकर ने यह समझाया कि सामाजिक न्याय आर्थिक संरचनाओं के पुनर्गठन के बिना संभव नहीं है। उन्होंने The Problem of the Rupee (1923) में स्पष्ट किया कि औपनिवेशिक वित्तीय ढांचा गरीबों, किसानों और श्रमिकों के हितों के प्रतिकूल था और संसाधनों के वितरण में गहरी असमानता उत्पन्न करता था। वे भूमि के पुनर्वितरण, श्रमिकों के अधिकार, सामाजिक सुरक्षा और आर्थिक अवसरों की समानता को लोकतंत्र की अनिवार्य शर्त मानते थे (Jaffrelot, 2005)। श्रमिक कल्याण की दिशा में उनके सुझाव अत्यंत व्यावहारिक और प्रगतिशील थे। अंबेडकर के प्रयासों के कारण भारत में पहली बार ८–घंटे कार्य–दिवस, न्यूनतम वेतन, मातृत्व लाभ, श्रमिक बीमा और ट्रेड यूनियन अधिकार जैसे कानूनी प्रावधान अस्तित्व में आए। उनके लिए श्रमिक केवल उत्पादन का औजार नहीं था, बल्कि गरिमा और अधिकारों वाला नागरिक था (Mendelsohn & Vicziany, 1998)। इस प्रकार आर्थिक और औद्योगिक क्षेत्र में उनका लक्ष्य एक ऐसे लोकतांत्रिक, समतामूलक और मानवीय ढाँचे का

Copyright © 2025, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

निर्माण था जिसमें हर व्यक्ति को सम्मानजनक आजीविका के अवसर मिलें।

लैंगिक समानता पर अंबेडकर का दृष्टिकोण उनके समावेशी चिंतन का महत्वपूर्ण स्तंभ है। वे भारतीय समाज में स्त्रियों की अधीनता को समग्र सामाजिक प्रगति के लिए सबसे बड़ी बाधा मानते थे। इसी उद्देश्य से उन्होंने हिंदू कोड बिल के रूप में एक व्यापक विधायी सुधार प्रस्तुत किया, जिसमें महिलाओं के वैवाहिक अधिकार, संपत्ति अधिकार, तलाक और गोद लेने से संबंधित समानता के सिद्धांत शामिल थे (Sharma, 2015)। उनके लिए स्त्री–स्वतंत्रता सामाजिक लोकतंत्र की अपरिहार्य शर्त थी। अंबेडकर ने यह भी सुनिश्चित किया कि औद्योगिक क्षेत्रों में महिला–श्रमिकों को सुरक्षा, सम्मान और उचित सुविधाएँ प्राप्त हों। महिलाओं के अधिकारों पर उनका यह दृष्टिकोण अपने समय से काफी आगे था और भारतीय समाज को गहराई से प्रभावित करता है।

अंबेडकर की समावेशी विचारधारा का सबसे सशक्त रूप भारतीय संविधान के निर्माण में दिखाई देता है। उन्होंने संविधान में समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व को केंद्रीय मूल्यों के रूप में स्थापित किया। मौलिक अधिकारों के अंतर्गत अस्पृश्यता–उन्मूलन, भेदभाव–निषेध और अवसरों की समानता की संवैधानिक गारंटी इस बात का प्रमाण है कि अंबेडकर सामाजिक समता को केवल नैतिक आग्रह नहीं, बल्कि कानूनी अधिकार के रूप में स्थापित करना चाहते थे। उनकी दृष्टि में संविधान एक ऐसा उपकरण था जो न केवल राज्य की शक्तियों को नियंत्रित करे, बल्कि समाज को नैतिक रूप से भी बदलने में सक्षम हो। इसी कारण उन्होंने 'संवैधानिक नैतिकता (constitutional morality) की अवधारणा प्रस्तुत की, जिसके अनुसार लोकतंत्र का वास्तविक अर्थ तभी प्रकट होता है, जब नागरिक और संस्थाएँ संविधान के मूल्यों पर आचरण करें (Constituent Assembly Debates, 1949)।

धार्मिक समावेशन के संदर्भ में अंबेडकर ने बौद्ध धर्म को एक ऐसे नैतिक ढाँचे के रूप में प्रस्तुत किया जो करुणा, समानता, तर्कशीलता और मानव–गरिमा पर आधारित हो। The Buddha and His Dhamma (1957) में उन्होंने बौद्ध धर्म को समाज के नैतिक पुनर्गठन का माध्यम माना और कहा कि वास्तविक धर्म वह है जो समानता और न्याय को बढ़ावा दे। उनके लिए बौद्ध धर्म एक आध्यात्मिक व्यवस्था नहीं, बल्कि सामाजिक नैतिकता और मानवतावाद पर आधारित एक परिवर्तनकारी परियोजना था। यहाँ धर्म का अर्थ सामाजिक जीवन को अधिक मानवीय बनाना था, जिससे समाज का सबसे कमजोर व्यक्ति भी सम्मान और सुरक्षा प्राप्त कर सके।

अंबेडकर के समावेशी चिंतन–धारा का अंतिम और व्यापक तत्व 'सामाजिक लोकतंत्र' की अवधारणा है, जिसमें स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व तीनों को एक साथ कार्यरत रहने की आवश्यकता है। उन्होंने चेतावनी दी थी कि स्वतंत्रता और समानता तभी टिक सकती है जब समाज में बंधुत्व की भावना हो। यह विचार भारतीय समाज के लिए एक नैतिक दिशा प्रदान करता है और बताता है कि लोकतंत्र केवल

Copyright © 2025, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

संस्थाओं का ढाँचा नहीं, बल्कि सामाजिक संबंधों का मानवीय रूप है।

समग्र रूप से अंबेडकर की समावेशी चिंतन–धारा एक ऐसी बहुआयामी परियोजना है जिसमें जाति–उन्मूलन, आर्थिक न्याय, श्रमिक अधिकार, लैंगिक समानता, राजनीतिक भागीदारी, संवैधानिक अधिकार और नैतिक–धार्मिक पुनर्जागरण समाहित हैं। यह चिंतन 21वीं सदी के भारत के लिए लिए भी उतना ही प्रासंगिक है, क्योंकि अंबेडकर का यह मॉडल मानव–केन्द्रित, न्यायपूर्ण और संवैधानिक समाज की दिशा प्रस्तुत करता है– एक ऐसा समाज जहाँ हर व्यक्ति को समान गरिमा और समान अवसर प्राप्त हों।

अंबेडकर के प्रमुख ग्रंथों में समावेशी दर्शन का विश्लेषण

डॉ. भीमराव अंबेडकर का समावेशी चिंतन केवल भाषणों या राजनीतिक वक्तव्यों तक सीमित नहीं है, बल्कि उनके प्रमुख ग्रंथों में अत्यंत व्यवस्थित, सैद्धान्तिक और ऐतिहासिक रूप से विकसित रूप में दिखाई देता है। उनकी रचनाएँ यह स्पष्ट करती है कि वे जाति, अर्थव्यवस्था, राज्य, धर्म और संविधान– सभी को 'इन्क्लूजन' यानी समावेशन की कसौटी पर परखते हैं। इस संदर्भ में Annihilation of Caste, The Problem of the Rupee, States and Minorities, Who Were the Shudras?, The Untouchables, Buddha and His Dhamma और संविधान सभा की बहसों में दिए गए उनके वक्तव्य मिलकर उनके समावेशी दर्शन की एक समग्र तस्वीर प्रस्तुत करते हैं (Rodrigues, 2002; Zelliot; 1992; Omvedt, 1994।

अंबेडकर का सबसे प्रसिद्ध और बहुचर्चित ग्रंथ Annihilaiton of Caste (1936) मूलतः एक अधूरी रह गई भाषण–पांडुलिपि है, लेकिन विचार की दृष्टि से यह आधुनिक भारत में सामाजिक समता की घोषणा–पत्र जैसी है। इस रचना में अंबेडकर ने जाति–प्रथा को केवल सामाजिक व्यवस्था नहीं, बल्कि 'निरंतर असमानता और बहिष्कार की मशीनरी' बताया। वे तर्क देते हैं कि हिंदू धर्म के शास्त्रीय संरचनाएँ, विशेषकर मनुस्मृति और वर्णाश्रम–धर्म की धारणाएँ, मनुष्य की समानता के सिद्धान्त के विरुद्ध खड़ी है और इसलिए किसी भी वास्तविक लोकतंत्र के साथ इनका सह–अस्तित्व संभव नहीं (Ambedkar 1936)। इस ग्रंथ में अंबेडकर का समावेशी दर्शन दो स्तरों पर स्पष्ट होता है– एक ओर वे जाति–विहीन समाज की कल्पना करते हैं, जहाँ जन्म के आधार पर किसी प्रकार की ऊँच–नीच न हो; दूसरी ओर वे यह भी कहते हैं कि जब तक सामाजिक संरचना में बराबरी नहीं आएगी, तब तक राजनीतिक अधिकार भी खोखले रहेंगे। यहाँ समावेशन का अर्थ केवल दलितों को 'ऊपर उठाने' से नहीं, बल्कि पूरे समाज की सोच और धार्मिक–नैतिक संरचना को बदलने से है।

अंबेडकर की आर्थिक चिंतनधारा The Problem of the Rupee: Its Origin and Its Solution (1923) में स्पष्ट रूप से उभरती है। यह ग्रंथ सतही तौर पर मुद्रा–नीति और वित्तीय इतिहास

पर केंद्रित दिखता है, लेकिन इसके भीतर छिपी बुनियादी चिंता यह है कि आर्थिक संरचना किस तरह आम जनता, विशेषकर गरीबों, किसानों, मज़दूरों और उपनिवेशित समाजों को हाशिए पर धकेल देती है। अंबेडकर ब्रिटिश शासन के वित्तीय प्रबंधन की आलोचना करते हुए दिखाते हैं कि कैसे मुद्रा–नीति, विनिमय दर और स्वर्ण मानक (gold standard) जैसी नीतियाँ धनी वर्गों के हित में और गरीब जनता के प्रतिकूल काम करती है (Ambedkar, 1923)। यहाँ उनका समावेशी दृष्टिकोण इस रूप में सामने आता है कि वे अर्थशास्त्र को केवल तकनीकी या 'एलिट' विमर्श न मानकर आम नागरिकों के जीवन से जोड़ते हैं। आर्थिक स्थिरता, मुद्रा की विश्वसनीयता और संसाधनों का न्यायपूर्ण वितरण– इन सबको वे एक ऐसे समावेशी राज्य की शर्त मानते हैं, जहाँ आर्थिक नीतियाँ समाज के सबसे कमजोर वर्गों की भलाई के लिए बनें न कि कवेल धनी–औपनिवेशिक गठजोड़ के हित में।

इसी कड़ी में States and Minorities (1947) अंबेडकर की राजनीतिक–संवैधानिक समावेशी दृष्टि का अत्यंत महत्वपूर्ण दस्तावेज है। यह मूलतः एक 'मेमोरांडम' है, जिसे उन्होंने संविधान निर्माताओं के समक्ष एक प्रस्तावित मॉडल के रूप में रखा था। इसमें वे सामाजिक और आर्थिक लोकतंत्र की ठोस रूपरेखा प्रस्तुत करते हैं– जैसे कि राज्य का दायित्व हो कि उत्पादन के प्रमुख साधन (जमीन, उद्योग, संसाधन) कुछ हाथों में केंद्रित न हों, बल्कि सामूहिक भलाई के लिए नियंत्रित किए जाएँ। वे अल्पसंख्यकों और वंचित समुदायों के लिए मूल अधिकारों, विशेष संरक्षण, पृथक प्रतिनिधित्व और आरक्षण जैसी व्यवस्थाओं की माँग करते हैं (Ambedkar, 1947)। यहाँ समावेशन केवल राजनीतिक प्रतिनिधित्व तक सीमित नहीं रहता, बल्कि अंबेडकर इसे 'state socialism और 'welfare state' की अवधारणा से जोड़ते हैं, जहाँ राज्य का कर्तव्य है कि वह समाज के कमजोर वर्गों के लिए सक्रिय रूप से अवसर पैदा करे (Jaffrelot, 2005)। इस ग्रंथ से यह स्पष्ट होता है कि अंबेडकर के लिए लोकतंत्र का अर्थ केवल चुनाव नहीं, बल्कि न्यायपूर्ण जीवन–स्थितियों की संस्थागत गारंटी है।

Who Were the Shudra? (1946) और The Untouchables: Who Were They and Why They Became Untouchables? (1948) अंबेडकर की ऐतिहासिक–समाजशास्त्रीय परियोजना का हिस्सा है, जिसमें वे शूद्रों और अछूतों की उत्पत्ति को ब्राह्मणवादी पाठों से अलग एक नये दृष्टिकोण से समझाना चाहते हैं। वे यह प्रश्न खड़ा करते हैं कि शूद्र और अछूत केवल 'धार्मिक श्रेणियाँ' नहीं, बल्कि ऐतिहासिक संघर्षों, राजनीतिक टकरावों और वर्ण–व्यवस्था की निर्मित राजनीति का परिणाम हैं। इन ग्रंथों में अंबेडकर जाति–व्यवस्था को शाश्वत और दिव्य व्यवस्था मानने के ब्राह्मणवादी दावे को नकारते हुए यह दिखाते हैं कि यह एक ऐतिहासिक रूप से निर्मित, बदलने योग्य और मूल रूप से राजनीतिक संस्था है (Ambedkar, 1946, 1948)। यहाँ उनका समावेशी योगदान यह है कि वे इतिहास को 'पीड़ितों की दृष्टि' से लिखते हैं, और दलित–बहिष्कृत समुदायों को भारतीय इतिहास का

Copyright © 2025, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

सक्रिय, एजेंसीपूर्ण और विचारशील सब्जेक्ट बनाते हैं। यह इतिहास–लेखन ही अपने आप में एक समावेशी प्रोजेक्ट है, जो ज्ञान–उत्पादन के केंद्र में उन आवाजों को लाता है जिन्हें परंपरागत इतिहास ने हाशिए पर रखा था (Omvedt, 1994; Zelliot, 1992)।

धर्म और नैतिकता के क्षेत्र में अंबेडकर का समावेशी दर्शन The Buddha and His Dhamma (1957) में एक संगठित रूप में सामने आता है। यह ग्रंथ केवल बौद्ध धर्म की जीवनी या धार्मिक व्याख्या नहीं, बल्कि 'एक नैतिक–सामाजिक दर्शन' की पुस्तक है, जिसमें अंबेडकर बुद्ध के संदेश को आधुनिक लोकतांत्रिक समाज के लिए पुनर्पाठ करते हैं। वे बुद्ध को केवल आध्यात्मिक गुरु नहीं, बल्कि एक ऐसे विचारक के रूप में प्रस्तुत करते हैं जो दुख, अन्याय, शोषण ओर असमानता के सामाजिक कारणों को समझकर उनका समाधान सुझाते हैं। अंबेडकर बुद्ध के 'धम्म' को करुणा, प्रज्ञा, समता और तर्कशील नैतिकता पर आधारित एक ऐसे धर्म के रूप में पुनर्परिभाषित करते हैं जो किसी भी प्रकार की जन्माधारित ऊँच–नीच को स्वीकार नहीं करता Ambedkar, 1957)। इस प्रकार, Buddha and His Dhamma में धर्म का अर्थ कर्मकांड, संप्रदाय और आध्यात्मिक पलायन से हटकर सामाजिक न्याय, नैतिकता और मानव–समता के सक्रिय कार्यक्रम से जुड़ जाता है। यह धर्म–समझ स्वयं में एक समावेशी धार्मिक–मानवतावाद है, जो दलितों, महिलाओं और हाशिए पर रहे समुदायों को गरिमा और स्वाभिमान प्रदान करता है (Guru, 2009)।

संविधान सभा की बहसों (Constituent Assembly Debates, 1946-1950) में अंबेडकर के वक्तव्य उनकी समावेशी दृष्टि के राजनीतिक–संस्थागत आयाम को प्रकट करते हैं। वे बार–बार इस बात पर जोर देते हैं कि भारत को केवल 'राजनीतिक स्वतंत्रता' नहीं, बल्कि 'सामाजिक और आर्थिक लोकतंत्र' भी चाहिए। वे चेतावनी देते हैं कि यदि संविधान द्वारा दिए गए राजनीतिक अधिकारों के साथ–साथ समाज में गहरी जड़ें जमा चुकी असमानता समाप्त नहीं हुई, तो लोकतंत्र 'सिर्फ एक दिखावा' बनकर रह जाएगा (Ambedkar, Constituent Assembly Debates, 1949)। वे संविधान में मौलिक अधिकारों, अस्पृश्यता उन्मूलन, आरक्षण, विधि के समक्ष समानता, विधि के शासन और संवैधानिक नैतिकता (constitutional morality) जैसी अवधारणाओं को शामिल करवाने के लिए तर्क देते हैं। उनकी दृष्टि में संविधान केवल सत्ता–संरचना का दस्तावेज नहीं, बल्कि एक 'नैतिक अनुबंध' है, जो राज्य और नागरिकों से अपेक्षा करता है कि वे समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व के सिद्धान्तों पर आचरण करें (Sharma, 2015)।

इस प्रकार यदि हम अंबेडकर के इन प्रमुख ग्रंथों को एक साथ रखकर पढ़ते हैं, तो यह स्पष्ट रूप से दिखाई देता है कि उनका पूरा बौद्धिक प्रोजेक्ट 'समावेशी न्याय' की तरफ अग्रसर हैं। Annihilation of Caste सामाजिक ढांचे को बदलने की माँग करता है; The Problem of the Rupee आर्थिक

Copyright © 2025, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

नीतियों को आम जनता के हित में पुनर्गठित करने की वकालत करता है; States and Minorities राजनीतिक–संवैधानिक संरचना में वंचित समुदायों के अधिकारों की संस्थागत गारंटी प्रस्तुत करता है; Who Were the Shudras? और The Untouchables इतिहास और ज्ञान–उत्पादन को हाशिए के समूहों के पक्ष से लिखते हैं; Buddha and His Dhamma धर्म को समानता और नैतिक मानवतावाद के आधार पर पुनर्परिभाषित करता है, और संविधान सभा में दिए गए उनके भाषण इन सभी विचारों को एक व्यावहारिक संस्थागत–राजनीतिक ढांचे में रूपांतरित कर देते हैं। इन ग्रंथों में अंबेडकर बार–बार यह संकेत करते हैं कि कोई भी समाज तब तक न्यायपूर्ण नहीं हो सकता जब तक उसके सबसे निचले, सबसे शोषित और सबसे बहिष्कृत वर्ग को समान अधिकार, समान अवसर और समान सम्मान न मिले। इस अर्थ में अंबेडकर की लेखनी केवल विद्वतापूर्ण विमर्श नहीं, बल्कि एक ऐसे समावेशी भारत की बौद्धिक और नैतिक नींव है, जो आज भी हमारे लोकतंत्र के लिए दिशा–सूचक की भूमिका निभाती हैं।

स्वतंत्र भारत के निर्माण में अंबेडकर का योगदान– एक समावेशी ढाँचा

डॉ. भीमराव अंबेडकर ने स्वतंत्र भारत के निर्माण में जिस समावेशी दृष्टि की स्थापना की, वह आधुनिक भारतीय लोकतंत्र की नैतिक और संस्थागत नींव के रूप में आज भी उतनी ही सशक्त दिखाई देती है। सामान्यतः उन्हें भारतीय संविधान का प्रमुख निर्माता माना जाता है, किंतु उनका योगदान इससे कहीं अधिक व्यापक और दीर्घकालिक है। वे भारत को एक ऐसे राष्ट्र के रूप में उभरते देखना चाहते थे, जहाँ सामाजिक न्याय, आर्थिक अवसर, राजनीतिक समानता, नैतिक लोकतंत्र और अल्पसंख्यकों की सुरक्षा केवल आदर्श न रहकर एक संरचनात्मक वास्तविकता बनें। संविधान सभा में मसौदा समिति के अध्यक्ष के रूप में अंबेडकर ने यह सुनिश्चित किया कि भारतीय संविधान एक समावेशी ढाँचा प्रदान करे, जो व्यक्ति के जन्म–आधारित भेद की बाधाओं को समाप्त कर नागरिकों के समान अधिकारों की गारंटी दे। उनके प्रयासों का परिणाम अनुच्छेद 14, 15, 16 और विशेष रूप से अनुच्छेद 17 जैसे प्रावधानों के रूप में सामने आया, जिनके माध्यम से समानता, समान अवसर और अस्पृश्यता–उन्मूलन को संवैधानिक मान्यता प्राप्त हुई। अंबेडकर इस बात को लेकर आश्वस्त थे कि यदि समाज में सदियों से जमा असमानता को मिटाना है, तो संविधान को सक्रिय रूप से सामाजिक न्याय स्थापित करने की दिशा में कार्य करना होगा। इसीलिए उन्होंने आरक्षण, प्रतिनिधित्व और सकारात्मक भेदभाव (affirmative action) जैसी व्यवस्थाओं को संवैधानिक ढाँचे का अभिन्न अंग बनाया, ताकि अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और वंचित समुदायों को शिक्षा, नौकरियों और राजनीति में वास्तविक भागीदारी मिल सके।

अंबेडकर की समावेशी परियोजना केवल संविधान तक सीमित नहीं थी; आर्थिक लोकतंत्र भी उनके राष्ट्र–निर्माण के दृष्टिकोण में उतना ही महत्त्वपूर्ण था। भारतीय समाज में व्याप्त आर्थिक असमानताओं, गरीबी और शोषण को वे राजनीतिक लोकतंत्र के लिए स्थायी खतरा मानते थे। इसीलिए निर्देशात्मक सिद्धान्तों (DPSP) की रचना में उन्होंने यह सुनिश्चित किया कि राज्य नागरिकों की न्यूनतम आजीविका,

Copyright © 2025, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

समान वेतन, संसाधनों के समान वितरण, सार्वजनिक स्वास्थ्य, शिक्षा और सामाजिक सुरक्षा जैसे लक्ष्यों की ओर प्रतिबद्ध हो। वे भूमि और पूँजी पर निजी एकाधिकार को लोकतंत्र के लिए खतरनाक मानते थे और इसीलिए भूमि सुधार तथा राज्य द्वारा उत्पादन के साधनों के सामाजिक नियंत्रण का समर्थन करते थे। श्रमिक कल्याण के क्षेत्र में उनका योगदान आधुनिक भारत की श्रम नीति की आधारशिला है– चाहे वह आठ घंटे कार्य–दिवस की स्थापना हो, न्यूनतम वेतन हो, मातृत्व लाभ हो या औद्योगिक सुरक्षा और सामाजिक बीमा की अवधारणा। भारत में श्रम कानूनों का आधुनिकीकरण अंबेडकर की सक्रिय सोच का परिणाम है, जो आज भी देश के मजदूरों की सुरक्षा का कानूनी आधार है।

अंबेडकर की समावेशी सोच सामाजिक और धार्मिक सुधारों के क्षेत्र में भी उतनी ही प्रखर रूप में दिखाई देती है। भारतीय समाज में महिलाओं की दोहरी दासता– घर और समाज को वे सामाजिक समानता की राह में सबसे बड़ी बाधा मानते थे। इसी कारण उन्होंने हिंदू कोड बिल जैसे ऐतिहासिक विधायी सुधारों का नेतृत्व किया, जो विवाह, संपत्ति, उत्तराधिकार और गोद लेने के मामलों में महिलाओं को समान अधिकार देता था। हालांकि यह बिल उनके जीवनकाल में पारित नहीं हो पाया, परंतु आगे चलकर भारतीय पारिवारिक कानून में जो व्यापक सुधार हुए, वे अंबेडकर की ही बौद्धिक पृष्ठभूमि पर आधारित थे। अंबेडकर का मानना था कि राजनीतिक लोकतंत्र तब तक टिकाऊ नहीं हो सकता जब तक समाज में बराबरी, स्वतंत्रता और बंधुत्व की भावना विकसित न हो, यही 'सामाजिक लोकतंत्र' उनके विचारों की केंद्रीय अवधारणा थी।

इसके अतिरिक्त, भारत के संस्थागत विकास में भी अंबेडकर की भूमिका निर्णायक रही। The Problem of the Rupee में प्रस्तुत उनके विचारों ने भारतीय रिजर्व बैंक (RBI) की स्थापना के लिए एक वैचारिक आधार प्रदान किया। इसके साथ ही, उन्होंने मजदूर कल्याण बोर्ड, रोजगार विनिमय केंद्रों, श्रमिक बीमा योजनाओं और सामाजिक सुरक्षा संस्थाओं की स्थापना में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया। शिक्षा के क्षेत्र में वे विशेष रूप से दलित और आदिवासी छात्रों के लिए छात्रवृत्ति, विदेश अध्ययन योजनाएँ और छात्रावासों की स्थापना के प्रबल समर्थक थे, क्योंकि वे शिक्षा को सामाजिक मुक्ति का सबसे सशक्त साधन मानते थे।

अल्पसंख्यकों और वंचित समूहों की सुरक्षा के बारे में अंबेडकर का दृष्टिकोण भारत की बहुसांस्कृतिक संरचना को समझने पर आधारित था। उन्होंने यह सुनिश्चित किया कि संविधान धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक अल्पसंख्यकों को पूर्ण सुरक्षा दे और राज्य किसी भी प्रकार के धार्मिक या जातीय भेदभाव से मुक्त रहे। इस प्रकार उनका मॉडल आधुनिक संदर्भ में 'inclusive citizenship' या समावेशी नागरिकता का प्रारंभिक और सबसे प्रभावशाली उदाहरण है।

अंततः, अंबेडकर ने लोकतांत्रिक संस्थाओं में 'संवैधानिक नैतिकता' (constitutional morality) के महत्व पर जोर देते हुए यह स्पष्ट किया कि संविधान केवल शासन का ढांचा नहीं, बल्कि जीवन का

Copyright © 2025, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

नैतिक मार्गदर्शक है। संवैधानिक नैतिकता का अर्थ है कि सत्ता का उपयोग नैतिकता के साथ हो, कानून का शासन सर्वोपरि हो, और संस्थाएँ सार्वजनिक हित में संचालित हो। विचार–विविधता का सम्मान, असहमति का अधिकार और कानून के समक्ष समानता–अंबेडकर के अनुसार किसी समावेशी लोकतंत्र की अनिवार्य शर्तें हैं।

इन सभी प्रयासों को समग्र रूप से देखें तो स्पष्ट होता है कि अंबेडकर का योगदान पाँच स्तरों– संवैधानिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक–नैतिक और संस्थागत पर फैला हुआ है। इन सभी स्तरों का साझा लक्ष्य एक ऐसा लोकतांत्रिक भारत था जो समानता और न्याय पर आधारित हो। इसलिए आज भी अंबेडकर का समावेशी ढाँचा भारतीय लोकतंत्र की आत्मा माना जाता है और देश के भविष्य के लिए एक स्थायी नैतिक दिशा प्रदान करता है।

वर्तमान भारत में अंबेडकर की प्रासंगिकता (Contemporary Relevance of Ambedkar)

डॉ. भीमराव अंबेडकर के विचार आज के भारत के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और संवैधानिक परिदृश्य को समझने के लिए अत्यंत अनिवार्य हो चुके हैं। 21वीं सदी का भारत एक ओर तीव्र आर्थिक विकास, डिजिटल परिवर्तन और वैश्विक प्रतिस्पर्धा की दिशा में आगे बढ़ रहा है, वहीं दूसरी ओर जातिगत हिंसा, सामाजिक असमानता, बेरोज़गारी, धार्मिक ध्रुवीकरण, संस्थागत क्षरण, लैंगिक विषमता, और मानवाधिकार संरक्षण की चुनौतियों से जूझ रहा है। इन परिस्थितियों में अंबेडकर का समावेशी चिंतन भारतीय लोकतंत्र के लिए एक नैतिक, संरचनात्मक और वैचारिक दिशा–सूचक के रूप में उभरता है। सामाजिक न्याय को लोकतंत्र की आत्मा और मानव गरिमा को संविधान का मूल मूल्य मानने वाली उनकी दृष्टि आज भी उतनी ही प्रासंगिक है, जितनी संविधान निर्माण के समय थी। अंबेडकर ने भारत को केवल एक राजनीतिक राष्ट्र नहीं, बल्कि एक सामाजिक–आर्थिक समुदाय के रूप में देखने पर बल दिया, जहाँ हर व्यक्ति को, उसकी पहचान चाहे जो भी हो, समान अधिकार और सम्मान मिलना चाहिए (Rodrigues, 2002)।

आज भी भारत में जातिगत असमानता और सामाजिक बहिष्कार बड़े पैमाने पर विद्यमान हैं, जिससे यह स्पष्ट होता है कि Annihilation of Caste में अंबेडकर द्वारा उठाए गए प्रश्न अभी भी अधूरे हैं। राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो (NCRB) के आंकड़ों में अनुसूचित जातियों और अनूसूचित जनजातियों के खिलाफ अत्याचार की घटनाएँ लगातार दर्ज होती है, और रोजगार, शिक्षा तथा भूमि–स्वामित्व में जातिगत विषमता बनी हुई है। कई अध्ययनों ने दिखाया है कि अर्थिक उदारीकरण से लाभ उठाने वाली मध्यम और उच्च वर्ग अधिकतर ऊँची जातियों से संबंधित हैं, जबकि दलित और आदिवासी समुदाय अभी भी संरचनात्मक वंचना का सामना करते हैं (Jaffrelot, 2005)। इन परिस्थितियों में अंबेडकर का जाति–विरोधी दृष्टिकोण और सामाजिक लोकतंत्र का आग्रह आज भी सामाजिक सुधार के लिए सबसे

Copyright © 2025, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

प्रभावी बौद्धिक साधन है। उन्होंने स्पष्ट कहा था कि राजनीतिक लोकतंत्र बिना सामाजिक लोकतंत्र के केवल एक तात्कालिक उपलब्धि है, जो तब तक टिकाऊ नहीं हो सकता जब तक समाज की संरचना बराबरी और बंधुत्व के सिद्धान्तों को स्वीकार न करें। वर्तमान भारत में यह चेतावनी और भी अधिक महत्वपूर्ण प्रतीत होती है।

आर्थिक क्षेत्र में भी अंबेडकर का समावेशी दृष्टिकोण समकालीन भारत की चुनौतियों को समझने में अत्यंत उपयोगी है। डिजिटल अर्थव्यवस्था और कृत्रिम बुद्धिमत्ता के युग में अवसरों का वितरण गहरे स्तर पर असमान है। बेरोजगारी और कुपोषण जैसी समस्याएँ एक बड़े जनसमूह को प्रभावित करती हैं, जबकि कुछ वर्गों को disproportionate लाभ मिल रहा है। सामाजिक सुरक्षा, श्रम अधिकार और कल्याणकारी राज्य की अवधारणा को मजबूत करने की आवश्यकता आज पहले से कहीं अधिक है। अंबेडकर ने The Problem of the Rupee और States and Minorities जैसे ग्रंथों में आर्थिक लोकतंत्र, श्रमिक संरक्षण और संसाधनों के समान वितरण पर जोर दिया था। आज, जब असंगठित क्षेत्र में काम करने वाले करोड़ों मजदूर असुरक्षित स्थितियों में कार्य कर रहे हैं, तब श्रम की गरिमा और सामाजिक सुरक्षा पर आधारित अंबेडकर की दृष्टि किसी भी समकालीन आर्थिक नीति के लिए अनिवार्य आधार होनी चाहिए। कोविड–19 महामारी के दौरान उत्पन्न सामाजिक–आर्थिक संकट ने यह स्पष्ट कर दिया कि अंबेडकर द्वारा प्रस्तावित कल्याणकारी राज्य का मॉडल आज भी सर्वाधिक प्रासंगिक है।

राजनीतिक संदर्भ में अंबेडकर की चेतावनियाँ और विचार आज के भारत को दिशा प्रदान करते हैं। उन्होंने बार–बार कहा था कि लोकतंत्र केवल चुनावों से नहीं चलता, बल्कि उसकी सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि संस्थाएँ कितनी स्वतंत्र, उत्तरदायी और नैतिक हैं। वर्तमान समय में लोकतांत्रिक संस्थाओं की स्वायत्तता, नागरिक अधिकारों की सुरक्षा, मीडिया की स्वतंत्रता और विधि के शासन पर होने वाली चुनौतियाँ अंबेडकर के 'संवैधानिक नैतिकता' (constitutional morality) सिद्धान्त को अत्यंत महत्वपूर्ण बनाती है (Ambedkar, Constituent Assembly Debates, 1949)। उन्होंने कहा था कि संविधान जितना महत्वपूर्ण है, उतना ही महत्वपूर्ण यह भी है कि लोग और संस्थाएँ संविधान के आदर्शों और नैतिकता को व्यवहार में अपनाएँ। आधुनिक भारत में जब राजनीतिक ध्रुवीकरण, भीड़, हिंसा, दमनकारी प्रवृत्तियों और असहमति के प्रति असहिष्णुता की घटनाएँ बढ़ रही हैं, तब अंबेडकर का यह आग्रह कि लोकतंत्र का अर्थ है व्यक्ति की गरिमा और अधिकारों का सम्मान और भी अधिक प्रासंगिक हो जाता है।

वर्तमान भारत में धार्मिक ध्रुवीकरण और कट्टरता की प्रवृत्तियाँ भी बढ़ी है। अंबेडकर का बौद्ध धर्म की ओर झुकाव और उनकी The Buddha and His Dhamma में प्रस्तुत नैतिकता का मॉडल इस संदर्भ में विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। वे धर्म को करुणा, समानता, वैज्ञानिक दृष्टि और मानवतावादी नैतिकता पर आधारित मानते थे। आज, जब धार्मिक पहचानें राजनीतिक और सामाजिक टकराव का कारण

Copyright © 2025, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

बन रही हैं, तब अंबेडकर द्वारा प्रस्तावित 'नैतिक धर्म' की अवधारणा एक समावेशी और शांतिपूर्ण समाज की आवश्यकता को पूरा कर सकती है। उनका बौद्ध धर्म किसी संप्रदाय का समर्थन नहीं करता, बल्कि एक नैतिक परियोजना है जो व्यक्ति की स्वतंत्रता और सामाजिक समानता को प्राथमिकता देती है।

अंबेडकर का लैंगिक समानता पर जोर भी वर्तमान भारत की वास्तविकताओं में अत्यंत प्रासंगिक है। महिलाओं के खिलाफ हिंसा, कार्यस्थल पर भेदभाव, वेतन असमानता और घरेलू श्रम का असमान बोझ आज भी गहरी सामाजिक समस्या हैं। हिंदू कोड बिल के माध्यम से जिस लैंगिक न्याय की परिकल्पना अंबेडकर ने की थी, वह आज भी अपर्याप्त रूप से ही लागू हो पाई है। विवाह, तलाक, संपत्ति और उत्तराधिकार से जुड़े मुद्दों में अभी भी कई असमानताएँ बनी हुई हैं। भारत में महिलाओं की शिक्षा और कार्यबल में भागीदारी की दर अपेक्षाकृत कम है और कई सामाजिक रूढ़ियाँ उन्हें मूलभूत अधिकारों से वंचित करती हैं। इन परिस्थितियों में अंबेडकर का यह कथन– ''मैं ऐसे धर्म को मानने को तैयार नहीं जो स्त्री को समान अधिकार न दें'' भारतीय समाज के लिए आज भी एक नैतिक चुनौती है।

21वीं सदी के भारत में बढ़ती आर्थिक विषमता, सामाजिक असमानताएँ, राजनीतिक तनाव, संस्थागत संकट, लैंगिक भेदभाव और धार्मिक ध्रुवीकरण अंबेडकर के विचारों को न केवल प्रासंगिक बनाते हैं, बल्कि अनिवार्य भी। उनके द्वारा प्रस्तावित समावेशी लोकतंत्र, सामाजिक न्याय, आर्थिक समानता, मानव गरिमा और संवैधानिक नैतिकता के सिद्धांत आज के भारत के लिए मार्गदर्शक हैं। उनके विचार हमें याद दिलाते हैं कि भारत की प्रगति तभी वास्तविक होगी जब समाज के सबसे हाशिए पर खड़े व्यक्ति को बराबर अवसर और सम्मान प्राप्त होगा। अंबेडकर के शब्दों में कहें तो, ''हमारी स्वतंत्रता तभी सुरक्षित होगी जब हम समानता और बंधुत्व के सिद्धांतों को व्यवहार में उतारेंगे।'' इसलिए अंबेडकर का चिंतन केवल ऐतिहासिक स्मृति नहीं, बल्कि समकालीन भारत की चुनौतियों के समाधान का एक वैज्ञानिक, नैतिक और व्यावहारिक मार्ग है, जो भारतीय लोकतंत्र को मजबूत करने के लिए आज पहले से कहीं अधिक आवश्यक है।

21वीं सदी के भारत के लिए अंबेडकर के विचारों का मार्गदर्शन

डॉ. भीमराव अंबेडकर का चिंतन न केवल 20वीं सदी के भारत मे लिए, बल्कि 21वीं सदी के अत्यंत जटिल सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और डिजिटल परिवेश के लिए भी एक गहरी दिशा प्रदान करता है। आज का भारत, एक ओर तीव्र वैश्वीकरण, तकनीकी नवाचार और आर्थिक उदारीकरण की ओर बढ़ रहा है, तो दूसरी ओर समाज में असमानताओं, नैतिक संकटों, धार्मिक ध्रुवीकरण, जातिगत हिंसा, बेरोज़गारी, डिजिटल विभाजन, पर्यावरणीय आपात स्थितियों और संस्थागत क्षरण जैसी चुनौतियों से घिरा हुआ है। ऐसे समय में अंबेडकर का समावेशी और मानव–केंद्रित दृष्टिकोण, जो समानता, गरिमा, न्याय, प्रबुद्ध नागरिकता और संवैधानिक नैतिकता पर आधारित है, राष्ट्रीय विकास के लिए एक निर्णायक मार्गदर्शक के रूप में उभरता है। अंबेडकर का दर्शन इस विचार पर आधारित था कि कोई भी समाज तब तक स्थिर

Copyright © 2025, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

और प्रगतिशील नहीं हो सकता जब तक वह अपने कमजोर, हाशिए पर स्थित और बहिष्कृत समुदायों को मुख्यधारा में सम्मान और अवसर के साथ शामिल न कर लें (Rodrigues, 2002)। 21वीं सदी का भारत इसी मूलभूत चेतावनी और मार्गदर्शन को पुनर्स्मरण किए बिना एक न्यायपूर्ण और समावेशी राष्ट्र नहीं बन सकता।

समकालीन भारत में बढ़ती आर्थिक असमानता के संदर्भ में अंबेडकर की आर्थिक दृष्टि एक महत्वपूर्ण मार्गदर्शन प्रस्तुत करती है। तकनीकी क्रांति और डिजिटल अर्थव्यवस्था के विस्तार ने नई संभावनाएँ खोली हैं, लेकिन साथ ही यह असमानताओं का एक नया स्वरूप भी पैदा कर रही है– जहाँ संसाधनों, अवसरों और डिजिटल कौशल तक पहुँच समान रूप से उपलब्ध नहीं है। असंगठित क्षेत्र में काम करने वाले करोड़ों श्रमिक तकनीकी बदलावों के कारण अस्थिरता का सामना कर रहे हैं। इन परिस्थितियों में अंबेडकर की यह चेतावनी और भी महत्वपूर्ण हो जाती है कि आर्थिक लोकतंत्र के बिना राजनीतिक लोकतंत्र अस्थिर रहता है। The Problem of the Rupee और States and Minorities में उन्होंने जो सिद्धान्त प्रस्तुत किए थे– जैसे आर्थिक समावेशन, संसाधनों के न्यायसंगत वितरण, श्रमिक अधिकारों की सुरक्षा और कल्याणकारी राज्य–वे आज डिजिटल युग की विषमताओं को नियंत्रित करने में अत्यंत उपयोगी हो सकते हैं। भारत की नई आर्थिक नीतियों को एक ऐसे ढाँचे की आवश्यकता है जो विकास को केवल GDP वृद्धि तक सीमित न रखते हुए सामाजिक समता, श्रम सुरक्षा, तकनीकी कौशल विकास और न्यूनतम आर्थिक सुरक्षा जैसे तत्वों को शामिल करें। अंबेडकर की यह बात कि ''लोकतंत्र तभी सशक्त होगा जब आर्थिक संरचना न्यायपूर्ण हो''– 21वीं सदी की नीतियों के लिए सर्वोपरि मार्गदर्शक है।

सामाजिक क्षेत्र में भी अंबेडकर के विचार आज की चुनौतियों को समझने और समाधान खोजने में महत्वपूर्ण दिशा प्रदान करते हैं। डिजिटल युग में भी जातिगत भेदभाव नए रूपों में सामने आ रहा है– साइबर–छल, ऑनलाइन ट्रोलिंग, डिजिटल बहिष्कार और एल्गोरिथमिक पूर्वाग्रह (algorithmic bias) जैसे रूपों में। ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में शिक्षा और तकनीकी अवसरों तक असमान पहुँच सामाजिक अंतर को और बढ़ा रही है। ऐसे में अंबेडकर का जाति–विरोधी दृष्टिकोण, जो Annihilation of Caste में अपनी सबसे तीव्र रूप में व्यक्त होता है; इस बात की याद दिलाता है कि सामाजिक विषमता केवल आर्थिक नीतियों से समाप्त नहीं होती, बल्कि इसके लिए मानवीय चेतना, सामाजिक नैतिकता और सांस्कृतिक दृष्टिकोण में गहरा परिवर्तन आवश्यक है। 21वीं सदी में सामाजिक न्याय को केवल संवैधानिक प्रावधानों तक सीमित रखने के बजाय उसे शिक्षा, मीडिया, तकनीक और संस्थागत व्यवहार के माध्यम से सक्रिय रूप से लागू करना होगा।

भारतीय लोकतंत्र की बदलती प्रकृति को देखते हुए अंबेडकर की 'संवैधानिक नैतिकता' (constitutional morality) की अवधारणा आज पहले से कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। उन्होंने कहा था

Copyright © 2025, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

कि संविधान का वास्तविक अर्थ तभी प्रकट होता है जब नागरिक और संस्थाएँ– दोनों इसके आदर्शों पर आचरण करें। आज, जब राजनीतिक ध्रुवीकरण, भीड़–हिंसा, असहमति का दमन, संस्थागत स्वतंत्रता का क्षरण और नागरिक अधिकारों पर दबाव जैसी घटनाएँ उभर रही हैं, तब अंबेडकर की यह चेतावनी अनिवार्य हो जाती है कि लोकतंत्र की सफलता केवल संस्थागत ढाँचे पर नहीं, बल्कि नागरिकों के नैतिक आचरण और विवेकपूर्ण सहभागिता पर निर्भर करती है (Ambedkar, Constituent Assembly Debates, 1949)। 21वीं सदी के भारत में लोकतंत्र को टिकाऊ बनाना है, तो राजनीतिक दलों, न्यायपालिका, मीडिया और प्रशासन को संवैधानिक आदर्शों के पालन में और अधिक प्रतिबद्ध होना होगा।

धार्मिक सद्भाव और सांस्कृतिक बहुलवाद के संदर्भ में भी अंबेडकर का दृष्टिकोण आज के भारत के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है। धार्मिक कट्टरता का उभार, पहचान–आधारित राजनीति, 'हम–वे' की विभाजनकारी मानसिकता और सांस्कृतिक ध्रुवीकरण बढ़ रहा है। ऐसे में अंबेडकर का बौद्ध धर्म की ओर झुकाव और The Buddha and His Dhamma में व्यक्त उनकी नैतिक मानवीय दृष्टि आज के भारत को एक शांतिपूर्ण, तर्कपूर्ण और करुणामय समाज की ओर ले जाने की क्षमता रखती है। अंबेडकर का बौद्ध धर्म किसी विशेष पंथ की श्रेष्ठता नहीं, बल्कि एक नैतिक–सामाजिक परियोजना है जो करुणा, प्रज्ञा, तर्कशीलता और समानता पर आधारित है। 21वीं सदी के भारत में सामाजिक सद्भाव के निर्माण के लिए इसी प्रकार की नैतिकता आवश्यक है– जहाँ धार्मिक पहचानें संघर्ष का कारण न बनें, बल्कि समाज को अधिक समावेशी बनाने का मार्गदर्शक बनें।

लैंगिक समानता के प्रश्न पर भी अंबेडकर का चिंतन आज पूर्णतः प्रासंगिक है। तकनीकी प्रगति के बावजूद महिलाएँ कार्यस्थल, परिवार और सार्वजनिक जीवन में भेदभाव का सामना कर रही है। घरेलू हिंसा, वेतन असमानता, यौन उत्पीड़न, डिजिटल उत्पीड़न और सामाजिक रूढ़ियाँ लैंगिक न्याय को बाधित करती हैं। अंबेडकर ने हिंदू कोड बिल के माध्यम से जिस स्त्री–स्वतंत्रता का मॉडल प्रस्तुत किया था, वह आज भी भारतीय समाज में केवल आंशिक रूप से ही साकार हुआ है। 21वीं सदी के भारत को एक ऐसे ढाँचे की आवश्यकता है जिसमें महिलाओं की सुरक्षा, समान अवसर, आर्थिक भागीदारी और शिक्षा तक पहुँच को सर्वोपरि रखा जाए। अंबेडकर का यह कथन कि– ''स्त्री की दासता समाज की दासता है''। आज भी नीति–निर्माण का मार्गदर्शन कर सकता है।

अंततः, 21वीं सदी के भारत के लिए अंबेडकर का सबसे बड़ा संदेश यह है कि विकास तभी अर्थपूर्ण होगा जब वह न्यायपूर्ण होगा। तकनीकी विकास, अवसंरचना निर्मिती, स्मार्ट सिटी, डिजिटल इंडिया और वैश्विक प्रतिस्पर्धा तभी टिकाऊ और नैतिक होंगे जब वे सबसे आखिरी व्यक्ति तक सम्मान, सुरक्षा और अवसर लेकर जाएँ। अंबेडकर का दर्शन हमें यह याद दिलाता है कि किसी भी समाज की वास्तविक प्रगति उसके उच्चतम वर्ग से नहीं, बल्कि सबसे कमजोर वर्ग से मापी जाती है। इसलिए, 21वीं सदी के भारत को उनकी चेतावनी– ''हम उससे उतना ही मजबूत हैं जितना हमारा सबसे कमजोर सदस्य''– को

Copyright © 2025, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

अपने विकास मॉडल का केंद्र बनाना आवश्यक है।

समग्र रूप से, अंबेडकर के विचार 21वीं सदी के भारत के लिए एक ऐसा नैतिक और वैचारिक ढाँचा प्रस्तुत करते हैं, जो सामाजिक न्याय, आर्थिक समानता, संवैधानिक नैतिकता, धार्मिक सद्भाव, लैंगिक न्याय और मानवीय गरिमा के सिद्धांतों पर आधारित है। उनका समावेशी दर्शन हमें यह सिखाता है कि भारतीय लोकतंत्र की सफलता केवल विकास की गति में नहीं, बल्कि विकास की समानता में निहित है। यही कारण है कि अंबेडकर केवल एक ऐतिहासिक व्यक्तित्व नहीं, बल्कि समकालीन भारत के लिए एक जीवंत मार्गदर्शक हैं। ऐसे मार्गदर्शक जिनके विचार आज और आने वाली पीढ़ियों के लिए भी उतने ही आवश्यक है।

निष्कर्ष

डॉ. भीमराव अंबेडकर का चिंतन भारतीय समाज, राजनीति, अर्थव्यवस्था और नैतिकता के लिए एक बहुआयामी और दूरदर्शी मार्गदर्शन प्रस्तुत करता है। उनका समावेशी दृष्टिकोण केवल किसी एक वर्ग की मुक्ति का कार्यक्रम नहीं, बल्कि पूरे समाज के पुनर्गठन की परियोजना था। ऐसी परियोजना जिसमें व्यक्ति की गरिमा, स्वतंत्रता, समान अवसर और सामाजिक न्याय को राष्ट्रीय विकास का आधार माना गया। अंबेडकर ने जाति–व्यवस्था, आर्थिक विषमता, लैंगिक अन्याय, राजनीतिक बहिष्कार और धार्मिक रूढ़िवाद जैसे उन सभी संरचनात्मक अवरोधों को चिन्हित किया जो भारत की आत्मा को विभाजित और कमजोर करते थे। संविधान निर्माण में उनके योगदान ने आधुनिक भारत के लिए एक ऐसा लोकतांत्रिक ढाँचा सुनिश्चित किया जिसमें समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व केवल नैतिक आदर्श नहीं, बल्कि संवैधानिक गारंटी बन गए। यह ढाँचा भारत के लोकतंत्र को केवल प्रक्रियात्मक नहीं, बल्कि मानवीय और न्यायपूर्ण भी बनाता है।

वर्तमान भारत में जब सामाजिक तनाव, जातिगत हिंसा, धार्मिक ध्रुवीकरण, बेरोजगारी, आर्थिक विषमता और वैश्वीकरण की जटिलताएँ नए रूप ले रही हैं, तब अंबेडकर का चिंतन और भी अधिक प्रासंगिक हो उठता है। वे हमें याद दिलाते हैं कि लोकतंत्र की सफलता केवल चुनावों, संस्थाओं और आर्थिक विकास की गति से नहीं मापी जाती, बल्कि इससे मापी जाती है कि समाज अपने सबसे कमजोर और हाशिए पर खड़े व्यक्ति के साथ कैसा व्यवहार करता है। डिजिटल युग के अवसरों और चुनौतियों के बीच भी अंबेडकर का अनुरोध कायम है कि भारत को सामाजिक लोकतंत्र की दिशा में निरंतर आगे बढ़ना होगा– जहाँ सामाजिक संबंध सम्मान पर आधारित हों, आर्थिक संरचना न्यायपूर्ण हो और राजनीतिक व्यवस्था संवैधानिक नैतिकता का पालन करे। इसी दृष्टि से अंबेडकर 21वीं सदी के भारत के लिए केवल एक ऐतिहासिक व्यक्तित्व नहीं, बल्कि एक जीवंत चेतना और मार्गदर्शक शक्ति है।

अंततः अंबेडकर का संदेश यही है कि राष्ट्र केवल भौगोलिक सीमाओं से नहीं, बल्कि उन मूल्यों से बनता है जिन्हें वह व्यवहार में अपनाता है। एक समान, न्यायपूर्ण, समतामूलक और करुणामय भारत का

Copyright © 2025, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies

सपना तभी साकार होगा, जब भारतीय सामाजिक ढांचा, संविधान और लोकतंत्र वही दिशा ग्रहण करें जिसे अंबेडकर ने अपने चिंतन, संघर्ष और लेखन के माध्यम से प्रस्तावित किया था। इस प्रकार, अंबेडकर का समावेशी चिंतन–अतीत की विरासत, वर्तमान की आवश्यकता और भविष्य की दिशा– तीनों को एक साथ जोड़ने वाली सेतु–रेखा बनकर आज भी भारत के लोकतंत्र की आत्मा में गहराई से विद्यमान है।

References

Ambedkar, B.R. (1923). The problem of the rupee: Its origin and its solution, P.S. King & Son.

Ambedkar, B.R. (1936). Annihilation of caste. Mumbai: Dr. Ambedkar Trust. (Original speech manuscript)

Ambedkar, B.R. (1946). Who were the Shudras? How they came to be the fourth varna in the Indo-Aryan society. Thacker & Co.

Ambedkar, B.R. (1947). States and minorities: What are their rights and how to secure them in the constitution of free India. Government of India Press.

Ambedkar, B.R. (1948). The untouchables: Who were they and why they became untouchables? Amrit Book Co.

Ambedkar, B.R. (1957). The Buddha and his Dhamma. Siddharth College Publications.

Ambedkar, B.R. (1948-50). Constituent Assemble Debates (Official Reports). Government of India.

Guru, G. (2009). Humiliation: Claims and context. Oxford Unversity Press.

Jaffrelot, C. (2005). Dr. Ambedkar and untouchabiligy: Analysing and fighting caste. Permanent Black.

Mendelsohn, O., & Vicziany, M. (1998). The untouchables: Subordination, poverty and the state in modern India. Cambridge University Press.

Omvedt, G. (1994). Dalits and the democratic revolution: Dr. Ambedkar and the Dalit movement in colonial India. Sage Publications.

Pai, S. (2002). Dalit assertion and the unfinished democratic revolution: The Bahujan Samaj Party in Uttar Pradesh. Sage Publications.

Rodrigues, V. (Ed.). (2002). The essential writing of B.R. Ambedkar. Oxford University Press.

Sharma, A. (2015). Ambedkar and the birth of Indian constitution. Orient Blackswan.

Teltumbde, A. (2018). Republic of caste: Thinking equality in the time of neoliberal Hindutva. Navayana.

Zelliot, E. (1992). From untouchable to Dalit: Essays on the Ambedkar movement. Manohar Publishers.

Copyright © 2025, Scholarly Research Journal for Interdisciplinary Studies